

श्रीमदाद्यशंकराचार्यविरचित

वेदसारशिवस्तवः

तथा

साधनपञ्चकम्

मेहता चेरिटेबल प्रज्ञालय ट्रस्ट
१०४, तिलक बाजार चौक
दिल्ली - ११०००६

वेदसारशिवस्तवः

पशूनां पतिं पापनाशं परेशं
गजेन्द्रस्य कृत्तिं वसानं वरेण्यम्।
जटाजूटमध्ये स्फुरद्गाङ्गवारिं
महादेवमेक स्मरामि स्मरारिम्।। १ ।।

पशूनाम् – पाश (नियम) में बँधे जीवों का,
पतिम् – पालन करने वाले को,
पापनाशम् – पाप (गलती) को नष्ट करने वाले को,
परेशम् – अन्तिम मालिक, जिनका आगे कोई मालिक न हो, उन्हें,
गजेन्द्रस्य कृत्तिम् – श्रेष्ठ हाथी का चमड़ा
वसानम् – पहने हुए को,
वरेण्यम् – वरण करने योग्य को
जटाजूटमध्ये – जटाओं के बीच में
स्फुरद् – दीखते हुए,
गाङ्गवारिं – गंगा के जल वाले को,
महादेवम् एकम् – ज्ञान और शक्ति में अद्वितीय को,
स्मरारिम् – कामनाओं के दुश्मन को
स्मरामि – याद करता हूँ।

जगद्गुरु श्री शंकराचार्य द्वारा विरचित "वेदसारशिवस्तवः" भगवान् शंकर की स्तुति है। इस स्तोत्र में ग्यारह श्लोक हैं। प्रथम नौ श्लोक भुजंगप्रयात छन्द में निबद्ध हैं तथा अन्तिम दो श्लोक रुद्र वसन्ततिलका में हैं। ये ग्यारह श्लोक एकादश रुद्र के प्रतीक हैं। भगवान् शंकर की ग्यारह मूर्तियाँ रुद्र हैं। ये हमारी ज्ञानेन्द्रियो का

– आँख, कान, नाक, जीभ, स्पर्श का तथा कर्मेन्द्रियों का अर्थात् वाणी, हाथ, पैर, मल व मूत्र त्यागने की इन्द्रियों का व मन बुद्धि अन्तः इन्द्रियों का प्रतीक हैं। मन हृदय में रहते हुए इच्छा करता है, बुद्धि मस्तिष्क में रहते हुए निश्चय करती है। ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान कराने वाली और कर्मेन्द्रियाँ कर्म कराने वाली होती हैं।

पशूनाम् – पशु अर्थात् जानवर। जानवर दो प्रकार के होते हैं। जो नियम का पालन करते हैं वे पालतू जानवर कहलाते हैं और जो नियमों को न मानकर स्वेच्छाचारी होते हैं, वे जंगली जानवर कहलाते हैं। पशु – जीव, उनके **पतिम्** – रक्षकः जो जीव नियम के अनुसार चलते हैं, परमेश्वर उनकी रक्षा सब प्रकार से करते हैं।

पापनाशम् – नियमानुसार चलने वाले जीव से यदि कोई गलती हो जाती है, तो ईश्वर उसे क्षमा कर देता है। किन्तु जो नियम पर न चलकर लगातार गलती करता है, भगवान् उसे क्षमा नहीं करता। जैसे कक्षा में नियमपूर्वक समय पर आने वाले छात्र को यदि किसी दिन कक्षा में पहुँचने में देर हो भी जाये तो शिक्षक उसे क्षमा कर देता है। वही अध्यापक हमेशा देर से आने वाले छात्र को क्षमा नहीं करता।

परेशम् – माना कि नियम से चलने वाले को तो भगवान् माफ कर देंगे, लेकिन भगवान् से ऊपर अगर कोई और है तो क्या वह भी उसे माफ करेगा? समाधान– ईश्वर से बड़ा और कोई नहीं होता, इसलिए उसे 'परेशम्' कहा।

गजेन्द्रस्य कृत्तिं वसानम् – भगवान् शंकर ने हाथी के चमड़े को कपड़े की भाँति क्यों पहना? इस सम्बन्ध में एक कथा इस प्रकार है – एक बार विनोद में पार्वती जी ने भगवान् शंकर की

आँखें पीछे से आकर बन्द कर लीं। शिवजी के दोनों नेत्र सूर्य-चन्द्र हैं। सूर्य-चन्द्र क्रमश: तिथियों और ऋतुओं के द्वारा समय का नियमन करते हैं। अत: उन सूर्य-चन्द्र के अवरुद्ध हो जाने से सृष्टि का क्रम रुक गया। आँखें बन्द होने से अन्धकार हो गया और उस अन्धकार से अन्धकासुर नामक राक्षस पैदा हो गया। अन्धकासुर का एक पुत्र हुआ, जिसने भगवान् शिव की अत्यधिक आराधना कर शिव जी से वर माँगा कि मुझे अत्यधिक शक्तिशाली हाथी बना दो।

बलशाली तो शेर भी होता है, तब उसने हाथी बनने का ही वर क्यों माँगा? समाधान - शेर में गति तो बहुत होती है, पर शक्ति हाथी में ही ज्यादा होती है। हाथी किसी पेड़ को जड़ से उखाड़ सकता है, शेर नहीं। शिव जी की कृपा पाकर वह बलवान् हाथी यहाँ-वहाँ घूम-घूम कर सभी को परेशान करने लगा। यहाँ तक कि देवताओं को भी वह कष्ट पहुँचाने लगा। तपस्या से प्राप्त शक्ति को अच्छे या बुरे किसी भी काम में लगाया जा सकता है। सज्जन लोग उस शक्ति का प्रयोग रक्षा के लिए करते हैं, किन्तु वह दुष्ट उन्मत्त हाथी अपनी ताकत से दुर्बलों को सताने लगा। प्रत्येक वस्तु के अच्छे और बुरे दो पक्ष होते हैं। उदाहरणार्थ विद्यालय में छात्र के पास यदि बल है तो वह किसी कमजोर छात्र की रक्षा में भी लगा सकता है या अन्य निर्बल छात्रों को पीटने व सताने में भी लगा सकता है। नीच आदमी को सफलता मिलने पर वह घमण्डी हो जाता है।

उस हाथी का अभिमान बढ़ जाने से दु:खी देवताओं ने शंकर भगवान् से प्रार्थना की, तब शिव जी ने उस गजेन्द्र को उठाकर

त्रिशूल पर टाँग दिया और उसके शरीर से रक्त बहने लगा। इसके पश्चात् उस हाथी ने अपना अपराध स्वीकार कर भगवान् से प्रार्थना की। शिवजी ने उससे कहा – 'मैं तुझे फिर से बलवान् बना देता हूँ।' तब उस हाथी ने कहा 'नहीं, मैं तो इसी प्रकार सूखा रह कर आपकी निकटता चाहता हूँ।' उसके द्वारा ऐसा कहे जाने पर शंकर भगवान् से उसे सिर पर ओढ़ लिया।

कथा का आध्यात्मिक अर्थ भी है। भगवान् की आँखें बन्द होने से अन्धकासुर की उत्पत्ति का यह आशय है कि जब तक हम भगवान् से विमुख रहते हैं, तब तक अज्ञान रूपी राक्षस बना रहता है। अज्ञानी होने से घमण्ड बढ़ जाता है, घमण्ड बढ़ने से विरुद्ध आचरण करने लगते हैं, विरुद्ध आचरण करने पर परमेश्वर दण्डित करते हैं। जैसे अन्धकासुर के पुत्र गज ने भगवान् से पुनः प्रार्थना कर भगवान् का वस्त्र बन उनकी सन्निधि प्राप्त की, उसी प्रकार जीव भी ईश्वर से प्रार्थना कर अपनी अंहवृत्ति को नष्ट कर यह अनुभव करता है कि मेरे अन्दर परमात्मा ही बैठकर सब कुछ कर रहा है।

वरेण्यम् – भगवान् शिव सभी के द्वारा वरण करने योग्य हैं।

जटाजूटमध्ये – ऋषि-मुनि वट वृक्ष के दूध को बालों में लगाकर बालों की जटा बना लेते हैं। हमारे शरीर में बाल ज्ञान व सुन्दरता के प्रतीक हैं, बिखरे बालों की जटा बनाने से अभिप्राय है, समस्त फैले हुए ज्ञान को इकट्ठा कर एक बना लेना। भगवान् शंकर का सारा ज्ञान मिला हुआ है; एक उद्देश्य से चलता है। रेखागणित के अनुसार अलग-अलग बिन्दुओं के मिलाने से रेखा बनती है। सबसे संक्षिप्त मार्ग वह होता है, जो सीधा हो, मण्डलाकार

या टेढ़ा-मेढ़ा न हो। इकट्ठे किये गये ज्ञान को जीवन के व्यवहार में लाना ही शिक्षा का उद्देश्य है। यही जटाजूट का अर्थ है।

स्फुरद्-गाङ्गवारिं - जटाजूट के मध्य में एकत्र हुआ गंगाजल रूपी ज्ञान स्फुरद् अर्थात् दीख पड़ रहा है।

महादेवमेकं स्मरामि स्मरारिम् - ज्ञान और शक्ति में जिनसे बड़ा कोई न हो एवं जो कामनाओं को नष्ट करने वाले हैं, ऐसे भगवान् महादेव का मैं स्मरण करता हूँ।

इस तरह इस श्लोक में पशु और मनुष्य में मूलभूत अन्तर यह बताया गया है कि पशु कर्तव्य को नहीं समझता, जबकि मनुष्य कर्तव्य को समझता है। जैसे गाय आदि पशु बिना सोचे कहीं भी मल-मूत्रादि करते रहते हैं, क्योंकि वे कर्तव्य को नहीं जानते। मनुष्य वह है जो ऐसा नहीं करे। बच्चा जब तक कहीं छिपकर चाकलेट खाता है और अपने दूसरे मित्रों को नहीं देता तब तक अपने कर्तव्य को भूल जाता है, क्योंकि स्कूल में मिलकर रहते हुए स्वादिष्ट वस्तुओं को बाँट कर खाना ही बच्चों का कर्तव्य है। इस प्रकार जो कामनायुक्त हो कर्तव्य को भूल जाता है, भगवान् शिव उससे नाराज हो जाते हैं तथा जो कामनारहित हो अपने कर्तव्य का पालन करते हैं, शिवजी उनसे प्रसन्न हो उनकी रक्षा करते हैं।

महेशं सुरेशं सुरारातिनाशं
विभुं विश्वनाथं विभूत्यङ्गभूषम् ।
विरुपाक्षमिन्द्वर्क-वह्नि-त्रिनेत्रं
सदानन्दमीडे प्रभुं पंचवक्त्रम् ।। २ ।।

महेशम् - सबसे बड़े शासन करने वाले की,

सुरेशम् - सुरों (देवताओं) पर शासन करने वाले की,

सुरारातिनाशम् – देवताओं के दुःखों का नष्ट करने वाले की,

विभुम् – व्यापक की,

विश्वनाथम् – सारे विश्व को नाथने वाले की,

विभूत्यङ्गभूषम् – भस्म ही जिनके अंग का भूषण है, उन की,

विरुपाक्षमिन्द्वर्क – वह्नि – त्रिनेत्रम् – चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि नामक तीन विशिष्ट नेत्र वाले की,

सदानन्दम् – सदा आनन्द में रहने वाले की,

प्रभुं पंचवक्त्रम् – पाँच मुखों वाले भगवान् की,

ईडे – स्तुति करता हूँ।

महेशम् – शासन करने में जो महान् हो वह महेश। महत्ता से क्या तात्पर्य है? वह शासन जो समझा कर किया जाये। जो बलपूर्वक किया जाता है वह अल्प शासन होता है। फौज में जो आदेश दिया जाता है, उसे बलपूर्वक कराया जाता है। राजा प्रजा को समझा कर जब शासन करता है, तब वह महाशासन कहलाता है। यदि कक्षा में अध्यापक के न होने पर भी अनुशासन बना रहे तो वह अध्यापक का महाशासन कहलाएगा। वह इसलिए कि अध्यापक ने अपने छात्रों को भली-भाँति समझा कर शासन किया। परमेश्वर भी जीवों को नियमादि समझाकर शासन करते हैं, अतः उन्हें महेश कहा जाता है।

सुरेशम् – असु=प्राण, र=रमण करने वाला। जो अपने प्राणों में रमण करने में लगे रहें एवं अपने सुख के लिए लगे रहें है, वे असुर और उनसे भिन्न अर्थात् जो सभी प्राणियों के कल्याण की इच्छा करें, वे सुर कहलाते हैं। भगवान् शंकर सुरेश कहलाते हैं, क्योंकि वे सुरों में सबसे बड़े हैं।

सुरारातिनाशम् – परमेश्वर उनकी रक्षा करते हैं, जो सुर हैं अर्थात् दूसरों के बारे में सोचते हैं। अर्थात् जो दूसरों की मदद करते हैं, भगवान् उन्हीं की मदद करते हैं। सुरों के विरोधियों का भगवान् नाश कर देते हैं।

विभुम् – भगवान् सर्वव्यापक हैं, सभी समय में तथा प्रत्येक स्थान पर विद्यमान हैं। इस प्रकार कोई समय या कोई देश ऐसा नहीं जहाँ परमेश्वर हमारी मदद न कर सके। द्वापर युग में एक समय कौरव एवं पांडवों के परस्पर जुआ खेलते समय युधिष्ठिर जब अपनी सम्पत्ति दाँव पर लगाते गये और हारते गये, तब उन्होंने अपनी पत्नी द्रौपदी को भी दाँव पर लगा दिया। युधिष्ठिर की यह नीति थी कि जुए में वे हारने पर अपना सब कुछ दाँव पर लगा देते थे। जब द्रौपदी को भी हार गये, तब द्रौपदी ने वहाँ उपस्थित गुरुजनों से प्रश्न किया– क्या युधिष्ठिर महाराज का अपनी सम्पत्ति के साथ मुझे भी दाँव पर लगाना उचित है? क्योंकि मैं जड सम्पत्ति तो नहीं हूँ बल्कि चेतन हूँ और चेतन अपना मालिक आप होता है। द्रौपदी के इस प्रश्न को सुनकर सभी ने अपना सिर झुका लिया और कोई जवाब नहीं दिया। तब दुर्योधनके कहने पर दुःशासन द्रौपदी का चीर – हरण करने लगा। वहाँ उपस्थित सभी लोगों को द्रौपदी ने अपनी सहायता के लिए पुकारा। लेकिन द्रौपदी को कहीं से किसी प्रकार की सहायता नहीं मिली और वह स्वयं भी अपनी रक्षा करने में असमर्थ हो गई। तब उसने भगवान् को सहायता के लिए पुकारा, उसकी सच्ची प्रार्थना को सुनकर सर्वव्यापी परमेश्वर ने किसी सूत (धागे) आदि की मदद के बिना द्रौपदी की साड़ी बढ़ा कर उसकी लाज बचाई। यह तभी संभव हुआ जब भगवान् सर्वव्यापक रहे।

विश्वनाथम् – भगवान् सारे विश्व को नाथ रहा है, अर्थात् वह अन्दर बैठकर हम पर नियन्त्रण करता है। जब हम चोरी करते हैं, या कोई गलत काम करते हैं, तब हमारा हृदय डरता है, स्वयं हमारा मन हमें धिक्कारता है। इस तरह अन्दर से बुराइयों के प्रति डर दिखाकर भगवान् हमें गलत कामों से रोकते हैं, इसीलिए वे विश्वनाथ हैं।

विभूत्यङ्गभूषम् – विभूति कहते हैं भस्म को। विभूति शिवजी के अंगों का विभूषण है। भस्म के विषय में कहा है – भस्मासुर नाम का एक राक्षस था, जिसने भगवान् शिव के निमित्त तपस्या कर शिवजी से यह वरदान प्राप्त किया था कि 'मैं जिसके सिर पर अपना हाथ रख दूँ, वह भस्म हो जाये।' शिव से वर प्राप्त कर वह उसे शिवजी पर ही आजमाने लगा! उसने मन मे सोचा कि शिवजी को भस्म करके मैं पार्वती से विवाह कर लूँगा। परमेश्वर की यह विशेषता है कि वह मनुष्य के कर्म को देखते हैं, संभावना को नहीं। अतएव वरदान के दुरुपयोग को जानते हुए भी उसे भगवान् ने यह वरदान दे दिया। पुरस्कार या दण्ड तभी दिया जा सकता है, जब तुम कार्य करने में स्वतन्त्र हो।

यदि तुम सोचने का तरीका ठीक करोगे तभी तुम शोक - मोह से दूर हो सकोगे। यदि तुम चरित्र को अच्छा बनाओगे, तभी तुम्हारे अन्दर आत्मशक्ति आयेगी, शक्ति का सदुपयोग करके तुम अपनी शक्ति बढ़ा सकते हो। भस्मासुर ने शक्ति का दुरुपयोग किया। अतः भगवान् शंकर ने उसका पहले ही इन्तज़ाम कर रखा था। भस्मासुर द्वारा उन्हें ही भस्म किये जाने के लिए दौड़ने पर डरकर वे ब्रह्माज़ी के पास गये, ब्रह्माजी ने उन्हें विष्णु भगवान् के पास भेजा। शंकर

ने अपने भय का कारण जब भगवान् विष्णु को बताया तब वे एक सुन्दर स्त्री (मोहिनी) का वेश बनाकर उस राक्षस के सामने नृत्य करने लगे। पापी व्यक्ति अस्थिरचित्त होते हैं। जैसे-जैसे मोहिनी नाचती थी, वैसे वह राक्षस भी नाचता था।

मोह अर्थात् अविवेक कराने वाला आकर्षण। जिस चीज पर हम मुग्ध हो जाते हैं, उसी के चारों तरफ हम नाचने लगते हैं। जो कामना और आसक्ति को भस्म बनाता है, वही भगवान् शंकर का भूषण बन जाता है। अगर हम कामुकता और आसक्ति को छोड़ देंगे तो संसार में हमें कोई भी चीज दुःख नहीं देगी। यदि तुम्हारे पास मिल्क चाकलेट है, उसे तुम खाते हो तो वह कामुकता नहीं है और वह मिल्क चाकलेट खाते हुए तुम फाईव स्टार चाकलेट की इच्छा रखते हो तो वह कामुकता है।

मोहिनी वेशधारी भगवान् विष्णु ने अपने सिर पर हाथ रखा तो ठीक वैसा ही भस्मासुर ने भी किया और ऐसा करते ही वरदान के अनुसार वह स्वयं भस्म हो गया। आज भी कैलास मानसरोवर के पास वह जगह है जहाँ भस्मासुर भस्म हुआ था।

भस्मासुर कामना से भरा हुआ था। कामना के कारण वह पार्वती माँ को अपनी पत्नी बनाना चाहता था। ठीक इसी प्रकार इस सारे संसार के मालिक तो हैं परमेश्वर। परन्तु हम प्रकृतिरूप माता पर अपना अधिकार जमाना चाहते हैं। जैसी हमारी मर्जी हो वैसा ही हम करें, यह है प्रकृति पर अधिकार जमाना और प्रकृति पर माँ की दृष्टि का न होना। प्रकृति हमें आवश्यकता की वस्तुएँ स्वयं दे देती है। भस्मासुर प्रकृति पर शासन करना चाहता था। वह सोचता था कि 'शंकर ही मालिक बन कर बैठे हैं। इसे मैं भस्म कर दूँगा', किन्तु

वह स्वयं ही भस्म हो गया।

इस तरह जब हम अपनी कामनाओं को समाप्त कर लेते हैं, तब भगवान् शंकर हमें अपने शरीर का आभूषण बना लेते हैं।

विरुपाक्षमिन्द्वर्क – वह्नि – त्रिनेत्रम् – अक्ष अर्थात् आँख। हमारी दो आँखें हैं, भगवान् शंकर की तीन आँखें हैं, इसलिए उन्हें विरूपाक्ष कहते हैं। भगवान् शंकर की वे तीन आँखें सूर्य, चन्द्र और अग्नि अथवा स्वाहा, स्वधा और वषट् नाम वाली हैं। कृष्ण यजुर्वेद में एक कथा आती है कि स्वाहा, स्वधा और वषट् तीन बहनें थीं। तीनों क्रम से देवताओं को, पितृजनों को तथा सिद्धों को भोजन करवाती थीं। एक बार अपने–अपने कार्यों को श्रेष्ठ मानकर तथा दूसरों के कार्यों को हीन मानकर वे आपस में झगड़ने लगीं। इस संसार में कोई कार्य बड़ा या छोटा नहीं है। इसी को समझाने के लिए भगवान् कृष्ण ने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जूठी पत्तल उठाई व महाभारत के युद्ध में अर्जुन के सारथी का कार्य किया। यदि हम दूसरों को अच्छा मानेंगे तो झगड़ा कभी नहीं होगा। उन झगड़ती बहनों को शंकर भगवान् ने समझाया कि परस्पर मिलकर काम करने पर ही सफलता मिलेगी। इसके बाद भगवान् शंकर ने स्वाहा, स्वधा और वषट् को अपनी आँखें बना लिया।

हमारी तीन शक्तियाँ काम करने वाली हैं। ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति। किसी भी उद्देश्य को पूरा करने के लिए इन तीनों शक्तियों का सामंजस्य होना चाहिए। सूर्य, चन्द्र, अग्नि क्रमश: ज्ञान, इच्छा तथा क्रिया शक्ति के प्रतीक हैं।

सदानन्दम् – महादेव हमेशा आनन्दरूप हैं। वे स्वयं आनंदमग्न रहते हैं। उनकी भक्ति करने वाले को आनंद देते हैं पर आनंद उनसे अलग नहीं है।

प्रभुं पञ्चवक्त्रम् – शिवजी के मुख पाँच हैं। चारों दिशाओं में एक-एक और एक ऊपर की ओर। पांचों मुखों के पांच नाम हैं। पश्चिम वाला सद्योजात, उत्तर वाला वामदेव, दक्षिण वाला अघोर, पूर्व वाला तत्पुरुष, ऊपर की ओर वाला ईशान। ऐसे वे प्रभु हैं अर्थात् उनकी सच्चिदानन्दरूपता स्वतन्त्र है।

ईडे – भगवान् सर्वगुणपूर्ण हैं। उनके वैभव का, दिव्य सामर्थ्य का, अलौकिक रूपका, प्रभाव आदि का वर्णन उनकी स्तुति है। मैं ऐसी स्तुति करता हूँ।

गिरीशं गणेशं गले नीलवर्णं
गवेन्द्राधिरूढं गुणातीतरूपम् ।
भवं भास्वरं भस्मना भूषिताङ्गम्
भवानीकलत्रं भजे पञ्चवक्त्रम् ।। ३ ।।

गिरीशम् – पहाड़ के मालिक को,
गणेशम् – सारे गणों के समूह के अधिपति को,
गले नीलवर्णम् – गले में नीले दाग वाले को,
गवेन्द्राधिरूढम् – गायों की जाति में श्रेष्ठ जो साँड, उस पर भली प्रकार से चढ़े हुए को,
गुणातीतरूपम् – गुणों से अतीत रूप वाले को
भवम् – संसार बनाने वाले को,
भास्वरम् – सतत प्रकाशमान को,
भस्मना भूषिताङ्गम् – भस्म से भूषित शरीर वाले को,
भवानीकलत्रम् – भवानी के पति को,
पञ्चवक्त्रम् – पाँच मुख वाले भगवान् शिव को,
भजे – नमस्कार करता हूँ।

गवेन्द्राधिरूढम् – किसी भी समूह में जो सबसे श्रेष्ठ होता है उसको राजा नाम से, इन्द्र नाम से जाना जाता है। गोजाति में श्रेष्ठ गवेन्द्र है। रूढ अर्थात् चढ़े हुए, अधिरूढ अर्थात् ऐसे चढ़े हुए जो उस पर भली भाँति स्थिर रहें। भगवान् गवेन्द्र पर स्थिर रूप में आरूढ हैं। घुड़सवार घोड़े पर आरूढ होकर घोड़े को नियन्त्रण में रखता है, सामान्य रूप से घोड़े पर सवार तो कोई भी हो सकता है, इसी प्रकार भगवान् गवेन्द्र को नियंत्रण में रखते हैं। संस्कृत में गो शब्द का अर्थ गाय और ज्ञानेन्द्रियाँ भी होता है। ज्ञान की इन्द्रियाँ जहाँ विचरण करती हैं, उन्हें गोचर या विषय कहते हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच हैं – नेत्र, कान, जिह्वा, नाक एवं त्वचा। नेत्र से रूप का, कान से शब्द का, जिह्वा से रस का, नाक से गन्ध का तथा त्वचा से स्पर्श का ज्ञान होता है। उक्त हर एक ज्ञानेन्द्रिय अपने-अपने विषय को ही ग्रहण करेगी। जैसे नमक के स्वाद को सिर्फ जीभ ही बता सकती है, दूसरी इन्द्रिय नहीं।

हमें अपनी इन इन्द्रियों का ठीक और अधिक प्रयोग करना चाहिए। इसी से इन्द्रियों का सामर्थ्य बढ़ेगा, ये पदार्थ का ठीक ज्ञान करा सकेंगी। जब हमारी ये ज्ञान की इन्द्रियाँ श्रेष्ठ बनेंगी, तभी भगवान् शंकर इन पर आरूढ अर्थात् सवार होंगे और अपने कार्य हमारे द्वारा करवायेंगे। हमें सदैव अपनी गवेन्द्र-शक्ति का ध्यान रखना चाहिये, तभी भगवान् शंकर हमें शुभ कार्यों के लिए प्रेरित करेंगे।

गुणातीतरूपम् – 'रूप्यते निरूप्यत इति रूपम्' अर्थात् जिसके द्वारा वस्तु को निरूपित किया जाये वह रूप है। चेहरे को भी रूप कहते हैं, क्योंकि चेहरे के द्वारा ठीक पता लग जाता है कि यह कौन है।

सभी गुणों को तीन हिस्सों में बाँटा गया है – सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण। सत्त्वगुण वह गुण है जो ज्ञान कराता है, रजोगुण क्रिया कराने वाला है एवं तमोगुण इन दोनों शक्तिया को सुला देता है। परमात्मा ही तीन गुणों से कार्य करवाने वाला है। परमेश्वर हमारे अन्दर हैं तभी हम ज्ञान प्राप्त करते हैं, क्रिया करते हैं तथा निद्रा आलस्य का कारण भी वही है। इस प्रकार परमेश्वर इन तीनों गुणों से कार्य कराने वाला होकर भी तीनों गुणों से अतीत है, इसलिए वह गुणातीत है।

ज्ञान, क्रिया तथा निद्रा हम नहीं हैं। हम जानने *वाले*, क्रिया करने *वाले* और सोने *वाले* हैं। परमेश्वर वह है जो हमसे जनाता है, कराता है और हमें सुलाता है।

हमें परमेश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये कि वह हमें अच्छा जनावे, अच्छा काम करावे और अच्छी नींद में सुलावे। प्रार्थना करने से भगवान् हमें सामर्थ्य प्रदान करते हैं। जैसे परीक्षा के दिनों में प्रार्थना करने पर भगवान् स्वयं आकर कापी में नहीं लिख देते बल्कि बुद्धि को सामर्थ्य वाली बना देते हैं। बुद्धि को काम में लाने पर ही वह बढ़ती है।

भवम् – भव अर्थात् होना। होने वाले संसार में जो कुछ होता है, वह होने वाला स्वयं परमेश्वर है। परमेश्वर की दृष्टि में काल-विभाजन अर्थात भूत, भविष्य और वर्तमान कुछ नहीं है। भूत, भविष्य और वर्तमान की सभी घटनाओं को जानने वाले भगवान् शंकर हैं।

एक बार कैलास पर्वत पर भगवान् शंकर और पार्वती बैठे हुए थे। पार्वती जी ने शिवजी से आग्रह किया कि मुझे ऐसी घटना सुनाईये जो पहले न घटी हो और अब घटने वाली हो। भगवान् शंकर ने कहा कि यह भविष्य कोई सुन लेगा तो अनर्थ हो जायेगा।

लेकिन पार्वती के फिर से आग्रह करने पर भगवान् शिव ने कहना शुरू किया। उनकी सेवा में लगे हुए पुष्पदन्त नाम के गन्धर्व ने भी सोचा कि 'ऐसी कौन-सी बात है, जो भगवान् मुझ से छिपकर कह रहे है।' इसलिए उसने वायु के रूप में उस घटना को सुन लिया। उसने माल्यवती नाम की सखी को वह घटना सुना दी। एक दो दिन के बाद माल्यवती ने पार्वती जी को वही घटना सुना दी। पार्वती जी को गुस्सा आ गया कि भगवान् ने तो मुझे सुनी-सुनायी घटना सुना दी, इसलिए उन्होंने पुष्पदन्त को बुलाया और उसे शाप दिया कि तुम मनुष्य लोक में पैदा होओगे। पुष्पदन्त मनुष्य लोक में पैदा होकर क्या करेगा, वही घटना भगवान् शंकर ने पार्वती जी को सुनाई थी।

परमेश्वर घटना का संकल्प कर लेते हैं, इसलिए घटना-चक्र को चलाना हमारे हाथ में नहीं। 'भव' शब्द के अर्थ द्वारा यह बतलाया कि कोई कार्य ढूँढना आवश्यक नहीं है। परिस्थिति जैसी सामने आये, उस परिस्थिति में हमें अच्छे से अच्छा काम करना चाहिए। खेल खेलते समय भी हमें अच्छे से अच्छा तरीका अपनाना चाहिये, चाहे जीत की स्थिति हो या हार की। अध्ययन में भी अपने पाठों को अच्छे से अच्छा पढ़ना चाहिए। जैसी भी परिस्थिति हो उसमें अच्छी तरह काम करना चाहिए। यही 'भव' का तात्पर्य है। सोना तो सोना ही रहता है, सोना बिना बदले हुए ही कड़े, अँगूठी आदि रूप में बन जाता है। सोना 'है' एवं उससे बनने वाले गहने 'होते' हैं। परमात्मा स्वरूप से कभी भी नहीं बदलता, किन्तु लोगों के कल्याण के लिए वह अनेक रूपों को धारण करता है, इसलिए उसे 'भव' कहते हैं।

भास्वरम् – भा अर्थात प्रकाश। जो हमेशा प्रकाश वाली चीज हो उसे भास्वर कहते हैं। परमेश्वर के दर्शन के लिए किसी अन्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती। जैसे सूर्य को देखने के लिए

किसी दूसरे प्रकाश की जरूरत नहीं होती।

भस्मना भूषिताङ्गम् – भगवान् शंकर का शरीर भस्म से आभूषित है। अपनी कामनाओं को जब हम भस्म कर देते हैं, तब परमेश्वर हमें अपना गहना बना लेते हैं।

भवानीकलत्रम् – भवानी जिसकी कलत्र (पत्नी) है। देवताओं और राक्षसों के बीच होने वाले युद्ध में जब देवता हार गये, तब उन्होंने विचार किया कि हम राक्षसों से कैसे जीतें। उसी समय इन्द्राणी, रुद्राणी, मृडानी, शिवानी इत्यादि शक्तियाँ देवताओं के शरीर से निकलीं और शक्तियों के मिलने से बनी हुई शक्ति भवानी कहलाई। भवानी ने सारे राक्षसों को मारा। वह शिवजी की पत्नी होने के कारण शिवजी को भवानीकलत्र कहा। जब तक इन्द्र, वरुण, गणेश, स्कन्द आदि देवता अलग-अलग अपनी शक्ति का प्रयोग करते रहे, तब तक वे राक्षसों को हरा न सके। उन्हीं लोगों ने जब शक्ति को मिला लिया तब उनको सफलता मिली।

जब ताकत को इकट्ठा कर लेते हैं, तब उसके मालिक स्वयं परमेश्वर हो जाते हैं। जब हम अपनी संकलित शक्ति को परमेश्वर के लिए अथवा दूसरों की भलाई के लिए प्रयोग करेंगे, तभी हमें सफलता मिलेगी।

भजे पञ्चवक्त्रम् – पाँच मुख वाले भगवान् शंकर को मैं भजता हूँ। यहाँ भज शब्द का अर्थ सेवा करना है। परमेश्वर की सेवा का तात्पर्य है सभी जीवों से प्रेमपूर्वक व्यवहार करना। एक बहुत क्रोधी स्वभाव की बालिका को गुरु ने भगवान् शंकर की पूजा करने की विधि बतलाई। उस विधि से पूजा करते हुए वह एक दिन अपने गुरुजी से क्रोध करके बोली- 'मुझे इतने दिन पूजा करते हो गये, अभी तक भगवान् मुझ पर प्रसन्न क्यों नहीं हुये?' तब गुरुजी ने उससे कहा - 'तुम अपने क्रोध को छोड़कर सबसे प्रेमपूर्वक व्यवहार

करो, तभी भगवान् प्रसन्न होंगे।' जब उस बालिका ने अपने क्रोधी स्वभाव को छोड़ दिया, तब भगवान् ने उसे दर्शन दिये।

शिवाकान्त शम्भो शशाङ्कार्द्धमौले,
महेशान शूलिन् जटाजूटधारिन् ।
त्वमेको जगद्व्यापको विश्वरूपः
प्रसीद प्रसीद प्रभो पूर्णरूप ।। ४ ।।

शिवाकान्त – शिवा को प्रिय लगने वाले,

शम्भो – कल्याणकारी,

शशाङ्कार्द्धमौले – जिसकी गोद में खरगोश है, ऐसे चन्द्रमा को जटा पर रखने वाले,

महेशान – सब पर शासन करने वाले,

शूलिन् – दुष्टों को दण्ड देने का अस्त्र पास में रखने वाले,

जटाजूटधारिन् – जटाजूट को धारण करने वाले,

त्वमेको जगद्व्यापकः – आप ही जड–चेतन जगत् में व्याप्त हैं,

विश्वरूपः – सब रूपों में रहने वाले हैं।

पूर्णरूप प्रभो – हे पूर्णरूप, प्रभावशाली आप,

प्रसीद प्रसीद – प्रसन्न होवें, प्रसन्न होवें।

शिवाकान्त – सामूहिक कल्याण के कार्य को शिवा कहते हैं। दूसरों की भलाई न करते हुए, स्वार्थवश जो मनुष्य अपने ही काम में लगा रहता है, उसे भगवान् अच्छे नहीं लगते। जो सभी के कल्याणहेतु कार्य करता है, शिवजी उसी को प्यारे होते हैं। पार्वती का भी एक नाम शिवा है। शिवाकान्त अर्थात् पार्वती के पति।

शम्भो – कल्याण हीं आपका स्वरूप है। जब कल्याण की बात मन में आये तब समझ लो कि भगवान् हमारे अन्दर है। ऐसा न होकर जब दूसरों को कष्ट पहुँचाने की बात मन में आये, तब समझो राक्षस

अन्दर घुसा हुआ है। अत: वह कल्याणकारी ही शम्भु है।

शशाङ्कार्द्धमौले – खरगोश जिसकी गोद में दीखता है, वह चन्द्रमा। द्वितीया तिथि का चन्द्रमा आधा अर्थात् अधूरा होता है, वह भगवान् शंकर की जटा में रहता है, इसलिए उन्हें शशांकार्धमौलि कहते हैं।

खरगोश अत्यंत चंचल होता है, मन भी खरगोश की तरह है। अपूर्ण शशांक अर्थात् चन्द्रमा ही भगवान् की जटाओं में रहता है। पूर्ण चन्द्र भगवान् का नेत्र है, ठीक इसी प्रकार जब हम अपने मन को कल्याणकारी कार्यों में लगाकर पूर्ण बना लेंगे, तब हमारा मन भगवान् की आँख हो जायेगा।

महेशान – भगवान् शंकर के पाँच मुख हैं। इनमें जो ऊपर वाला मुख है, उसे ईशान कहते हैं। ईशान मुख ही सबका नियन्त्रण करता है।

शूलिन् – भगवान् शंकर दुष्टों को दण्ड देने के लिए अपने पास शूल नाम का अस्त्र रखते हैं। जो गलती करते हुए उसको सुधारने की कोशिश नहीं करते, वे दुष्ट हैं। ऐसे दुष्टों को वे दण्ड देते हैं। जो अपनी गलती का अनुभव कर सुधार लेते हैं, भगवान् उसका पालन करते हैं।

जटाजूटधारिन् – भगवान् शिव अपने बालों को इकट्ठा करके बाँध लेते हैं। इकट्ठे किऐ बालों को जटा कहते हैं एवं जटाओं को बाँध कर बने जूड़े को जूट कहते हैं। जूट का ही अपभ्रंश जूड़ा है। बाल हमारे यहाँ ज्ञान के प्रतीक हैं। जैसे दिमाग से विभिन्न प्रकार का ज्ञान निकलता है, वैसे ही सिर से विभिन्न बाल निकलते हैं। शिखा को बाँध कर रखने का मतलब है कि मैं अपने ज्ञान को

नियन्त्रित रखूँगा। एक बार चाणक्य नाम के विद्वान् ब्राह्मण राजा नन्द की राजसभा में गये, वहाँ पर राजा के द्वारा अपमान किए जाने पर चाणक्य ने प्रतिज्ञा की "जब तक नन्द वंश का नाश नहीं कर दूँगा, तब तक शिखा नहीं बाँधूंगा।" इस प्रकार शिखा को खोल देने का अभिप्राय था ज्ञान पर नियन्त्रण न रखकर नन्द वंश को नष्ट करना। उन्होंने नाश करा कर ही शिखा को पुनः बाँधा।

त्वमेको जगद्व्यापको विश्वरूपः – जड-चेतन कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है, जिसमें भगवान् व्याप्त न हो। जैसे भारतीयता हम सब में व्याप्त है, उसी प्रकार परमात्मा सत्-चित्-आनन्द रूप से संसार में व्यापक है। जैसे एक गाय में सासना (गलकम्बल) के बता दिये जाने पर सभी गायों का ज्ञान हो जाता है ऐसे ही परमात्मा के सत्-चित्-आनन्द रूप को एक जगह पहचान लेने पर सारे संसार में उसके रूप को जान लेंगे।

प्रभो पूर्णरूप – प्रभु अर्थात् प्रभाव वाले। हम परमात्मा के विश्वरूप को जानकर भी उसके पूर्णरूप को नहीं जान पाते। आपकी प्रसन्नता से ही हमको आपके पूर्णरूप का ज्ञान हो पायेगा।

प्रसीद प्रसीद – अतः हे परमेश्वर, आप प्रसन्न होवें, प्रसन्न होवें।

परात्मानमेकं जगद्बीजमाद्यं,
निरीहं निराकारमोङ्कारवेद्यम् ।
यतो जायते पाल्यते येन विश्वं
तमीशं भजे लीयते यत्र विश्वम् ।। ५ ।।

परात्मानमेकम् – जो सबसे श्रेष्ठ अकेला आत्मा,
जगद्बीजम् – सारे जड और चेतन का बीज,

आद्यम् – सर्वप्रथम (कारण),

निरीहम् – बिना इच्छा वाला,

निराकारम् – बिना आकार वाला,

ओङ्कारवेद्यम् – ॐ के द्वारा जिसको जाना जाता है,

यतो जायते – जिससे यह संसार उत्पन्न हुआ है,

येन विश्वं पाल्यते – जिससे यह संसार पाला जाता है,

यत्र विश्वं लीयते – जिसमें यह संसार अन्त में लीन हो जाता है,

तमीशं भजे – उस ईश का भजन करता हूँ।

परात्मानमेकम् – हम लोग तीन अवस्थाओं का अनुभव करते हैं। परमात्मा इन तीन अवस्थाओं का अनुभव कराने वाला एवं शासन करने वाला एक है। अवस्थाएँ तीन हैं – जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति। जाग्रत् अवस्था में हम स्थूल पदार्थों से इन्द्रियों के द्वारा व्यवहार करते हैं। स्वप्नावस्था में इन्द्रियों और स्थूल पदार्थों के बिना मन से व्यवहार होता है। सुषप्ति अवस्था – जहाँ पर हम न इन्द्रियों से स्थूल पदार्थ देखते हैं और न ही मन से। जाग्रत्, स्वप्न अवस्थाओं में जब हम व्यवहार करते हुए थक जाते हैं, तब परमेश्वर की गोद में चले जाते हैं।

एक बार राजा जनक दिन में भोजन करने के बाद अपने बिस्तर पर आराम कर रहे थे। उन्हें एक स्वप्न दिखाई दिया : राजा जनक एक युद्ध में किसी शत्रु राजा से हार गये हैं। उस राजा ने उन्हें पकड़ने के लिए सैनिकों को छोड़ा हुआ है। राजा जनक दुर्गम पहाड़ों – जंगलों में छिपते भटक रहे हैं। उन्हें जोरों की भूख लगी हुई है। एक गाँव में कहीं भिखारियों को भोजन मिलता देख अपने को छिपाते हुए वे

भी उस पंक्ति में शामिल हो गये। जब राजा जनक की बारी आयी तब तक सारा भोजन बँट चुका था। राजा ने रसोईये से प्रार्थना की कि 'इस बर्तन में चिपका हुआ थोड़ा बहुत भोजन हो तो मुझे दे ही दो।' रसोईये ने एक टूटे हुए मिट्टी के पात्र में उन्हें भोजन दे दिया। जैसे ही राजा जनक उस भोजन को खाने के लिए तैयार हुए, वैसे ही एक आकाश से उड़ती हुई चील ने उस भोजन पर झपट्टा मार कर उस भोजन को जमीन पर गिरा दिया। चील के इस झपट्टे के साथ ही राजा की नींद खुल गई और सपना टूट गया। उन्होंने देखा कि वे तो अभी भोजन करके अपने मुलायम बिस्तर पर सो रहे हैं।

इस सपने को देखकर राजा ने अपनी सभा में विद्वानों से पूछा – 'यह सच है या वह सच है?' इस प्रश्न के अर्थ को इस प्रकार समझें कि जाग्रत् अवस्था में मेरा बिस्तर पर सोना सच है या स्वप्न में अति दीन, गरीब होकर भोजन के लिए भटकना और मिले हुए भोजन का मिट्टी में गिर जाना, वह सच है? उनके गुरु अष्टावक्र जी ने राजा को जवाब दिया कि 'हे राजा! न तो जाग्रत् अवस्था सत्य है और न ही स्वप्न अवस्था सत्य है। इन सभी अवस्थाओं का अनुभव कराने वाला परमेश्वर सत्य है।'

"एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" इस श्रुति का अर्थ है – वह परमात्मा एक होते हुए भी बहुत से रूपों वाला है, ऐसा वेद को जानने वाले ब्राह्मण को ऋषि कहते हैं। इसीलिए छोटे से छोटे कीड़े से लेकर देवताओं तक परमात्मा सब में एक जैसा ही विद्यमान है।

जगद्बीजमाद्यम् – समस्त संसार उस परमात्मा से ही पैदा हुआ है, अतः परमात्मा ही इस संसार का बीज है। परमेश्वर ने मछली का रूप बनाकर सन्ध्या में रत मनु महाराज से कहा – 'हे मुने! आप

मुझे अपने कमण्डलु में रखकर मेरी रक्षा करो।' कुछ दिन बाद जब वह मछली बड़ी हो गई तब उसने मनुजी से कहा 'आप मुझे मटके में रख दो।' और अधिक बड़ा होने पर उसने तालाब में छोड़ने को कहा और अन्त में समुद्र में छोड़ने को कहा। समुद्र में छोड़े जाते समय मनु से कहा - 'आज से सातवें दिन यह सारा संसार प्रलय आने पर जल में डूब जायेगा। तब तुम अपनी नाव मेरे दाँतों से बाँध देना।' इस प्रकार मछली रूपी परमेश्वर द्वारा बचाये जाने पर प्रलय के पश्चात् मनु से फिर सृष्टि का प्रारम्भ हो गया । इस उदाहरण द्वारा परमात्मा का जगत् के आद्य बीज रूप में होना समझा जा सकता है।

निरीहम् – जो चीज तुम्हारे पास न हो उसको पाने की इच्छा होती है और उससे सुख होता है तथा न मिलने पर दुःख होता है। कोई चीज ऐसी नहीं है जो परमात्मा को प्राप्त न हो, इसलिए परमात्मा को किसी चीज की इच्छा नहीं है। निरीह होने के कारण ही हर एक को वे अपने कर्म के अनुसार फल दे सकते हैं। परमात्मा को कुछ नहीं चाहिए इसलिए हरेक व्यक्ति के कर्म का फल वैसा ही देते हैं जैसा कर्म किया है। परमात्मा सब कुछ करता है, क्योंकि करना उसका स्वभाव है। बिना इच्छा के हम सब को समुचित फल ही देता है।

पुराणों में कथा आती है कि जब गणेश जी का जन्म हुआ तब उनका चेहरा भगवान् शंकर जैसा ही था। सभी देवता जब पार्वतीजी को बधाई देने के लिए आये तो उनमें शनि देवता भी थे, लेकिन वे एक तरफ सिर नीचा करके बैठ गये। पार्वती जी को यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने उससे बार-बार कहा - 'तू मेरे लड़के की तरफ क्यों नहीं देखता?' उनके बार-बार कहने पर जैसे ही शनि ने गणेश की

तरफ देखा, उनकी गर्दन कटकर गिर गई! तब पार्वती जी को बहुत दुख हुआ और भगवान् से कहा कि 'लड़का तो मर गया इसलिए आप जल्दी ही किसी का सिर लगाकर इसको जीवित करें।' बाहर से हाथी का सिर लाकर गणेश जी पर लगा दिया गया।

हाथी का सिर ही क्यों जोड़ा गया इसमें भी कारण है। एक बार इन्द्र और रम्भा नदी के किनारे पर रह रहे थे। उधर से दुर्वासा ऋषि निकले, जो भगवान् विष्णु के यहाँ से पारिजात का फूल लेकर आ रहे थे। उन्होंने सोचा यह फूल देवराज इन्द्र को देने योग्य है, जिससे इन्द्र बुद्धिमान् हो जायेगा क्योंकि पारिजात पुष्प की यह विशेषता है कि यह जिसके सिर पर होगा, वह बुद्धिमान् हो जायेगा इन्द्र उस फूल को लेकर जैसे ही मुड़ा तो रम्भा ने हठ करते हुए कहा कि यह फूल मुझे दे दो। इन्द्र के न देने पर वह उनसे छीनने लगी। इन्द्र ने उस फूल को बचाने के लिए उसे ऊपर की ओर फेंका, वह फूल थोड़ी ही दूर पर खड़े एक हाथी के सिर पर जा गिरा। हाथी झट वहाँ से भागा। उसी हाथी का सिर काटकर गणेश जी को लगाया गया, इसीलिए गणेश जी सबसे अधिक बुद्धिमान् हैं और जो भी उनकी पूजा करता है, वह बुद्धिमान् होकर सर्वत्र विजयी होता है।

इस कथा के द्वारा यह बतलाया कि यद्यपि गणेश जी भगवान् शंकर के अपने ही पुत्र थे, तथापि निरीह होने के कारण ही शनि की दृष्टि पड़ने पर भी शिवजी ने उन्हें नहीं बचाया। क्योंकि शनि की दृष्टि जहाँ पड़ेगी, नाश ही करेगी - यह परमेश्वर का बनाया हुआ नियम है। परमेश्वर जिस नियम को बनाते हैं, उसी के अनुसार चलते हैं, नियम बदलते नहीं। पार्वती जी के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर जिस पारिजात फूल वाले हाथी का सिर गणेशजी पर लगाया गया,

उसके द्वारा भी इनकी निरीहता ही प्रकट होती है कि अपनी कोई इच्छा न होते हुए उत्तम वस्तु को उत्तम स्थान पर पहुँचा देते हैं। इसलिए भगवान् शंकर को निरीह कहा जाता है। जो परमात्मा है, एक है, जगत् का आदिकारण है, इच्छारहित है, निराकार है, और प्रणव द्वारा जानने योग्य है तथा जिनसे सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति और पालन होता है और फिर जिसमें उसका लय हो जाता है, उस प्रभु को मैं भजता हूँ।

न भूमिर्न चापो न वह्निर्न वायु–
र्न चाकाशमास्ते न तन्द्रा न निद्रा।
न ग्रीष्मो न शीतं न देशो न वेषो
न यस्यास्ति मूर्तिस्त्रिमूर्तिं तमीडे ।। ६ ।।

भूमिः – भूमि
न – नहीं
आपः – जल
न – नहीं
वह्नि – आग
न – नहीं
वायुः – वायु
न – नही
आकाशम् न – आकाश नहीं
आस्ते – है
तन्द्रा न – तन्द्रा नहीं
निद्रा न – निद्रा नहीं,
ग्रीष्मः न – गर्मी नहीं,
शीतं न – सर्दी नहीं,
देशः न – देश नहीं,
वेषः न – वेश नहीं,
यस्य – जिसकी
मूर्तिः – (कोई) मूर्ति
न अस्ति – नहीं है
तम् – उस
त्रिमूर्तिं – त्रिमूर्ति की
ईडे – स्तुति करता हूँ।

जिस साधन से किसी वस्तु के होने का पता लगता है, उसी साधन से उस वस्तु के नहीं होने का पता लगता है। जैसे गन्ध का

पता नाक से चलता है, परन्तु जुकाम से जब नाक बन्द हो जाती है, तब वदबू का भी पता नहीं चलता है। परमेश्वर किसी भी इन्द्रिय और मन के द्वारा नहीं जाना जाता, इसलिए जब अर्जुन ने भगवान् से कहा 'आप अपना रूप दिखाईये' तब भगवान् ने कहा 'इन आँखों से तुम मुझे नहीं देख सकते! मुझे देखने के लिए दिव्य चक्षु चाहिये।' दिव्य चक्षु का पता कैसे लगता है? तुमको साफ दीखता है, लड़का हाथ उठाकर आ रहा है, मुझे थप्पड़ मारेगा, थप्पड़ वाली बात कोई आँख से तो दीख नहीं रही परन्तु फिर भी दीख रही है। हमें इस आँख से तो वह केवल आते हुए दिखता है, थप्पड़ मारेगा, यह कैसे दीखा? यह दीखा मन रूपी आँख से। परमात्मा जिस आँख से दीखता है, उसको दिव्य चक्षु कहते हैं। दिव्य चक्षु से अर्जुन ने भगवान् के रूप को देखा। आँख से तो धोखा हो सकता है, परन्तु दिव्य चक्षु से धोखा नहीं हो सकता।

चीज की वास्तविकता दिव्य चक्षु से ही दीखती है। एक बार उपमन्यु महर्षि जब छोटे बच्चे थे तब अपने मामा के घर गये। वहाँ उन्हें खूब दूध, दही मलाई आदि खाने को मिलता था। उपमन्यु को दूध बहुत अच्छा लगता था। घर आकर माँ से कहा कि 'मैं दूध पीऊँगा!' माँ ने कहा कि 'हमारे यहाँ तो गाय है नहीं और बाजार से दूध खरीदने के पैसे भी नहीं है।' एक दिन वे जिद करके बैठ गये, 'आज दूध पीकर हीं छोड़ूँगा।' उपमन्यु महर्षि ने जब जिद पकड़ ली तो माँ ने सोचा अब क्या करूँ? माँ ने पानी में आटा घोलकर उसे पीने को दिया, घूँट भरते ही उसे पता चल गया यह दूध तो नहीं है। उपमन्यु ने जब उसको थूक दिया तब माँ ने कहा 'दूध तो भगवान् शंकर की कृपा से ही मिल सकता है।' उपमन्यु ने

माँ से पूछा, भगवान् शंकर कहाँ मिलेंगे ? माँ ने कहा, 'भगवान् तो तपस्या करने से मिलते हैं।' उपमन्यु ने कहा 'मैं तो रोटी तब खाऊँगा जब भगवान् शंकर से मिल लूँगा।'

छोटा ही बच्चा था, तुरन्त ध्यान करने लगा। छोटे बच्चे के ऊपर सभी को जल्दी से दया आ जाती है। थोड़े ही दिनों में भगवान् शंकर ने पार्वती जी से कहा, 'अपने चल कर उसको दर्शन दे देवें' जब दर्शन देने के लिए गये तो भगवान् शंकर ने सोचा पहले इसकी परीक्षा लेनी चाहिये। भगवान् शंकर वहाँ पर इन्द्र का रूप लेकर गये। जाकर उसे जोर से आवाज दी, 'अरे उपमन्यु ! तुमको दूध चाहिये ना, मैं तुमको कामधेनु गाय दे दूँगा।' उपमन्यु ने कहा 'दूध दही तो क्या, सारे संसार का राज्य भी दें तो नहीं लेना है। मुझे तो पहले शंकर जी के दर्शन करने हैं।' इन्द्ररूपधारी शंकर जी कहने लगे, 'तुम भी किसकी बात करते हो! वह तो साँड पर बैठकर चलते हैं। उनके खुद के घर में ही दूध का इन्तजाम नहीं है, उनसे इसकी आशा छोड़ो। वह तो बैठे भी समाधि में रहते हैं।' उपमन्यु ने कहा 'मुझे तो केवल भगवान् शंकर से ही लेना है। उनके पास कुछ हो या न हो, तुम यहाँ से चले जाओ, अब नहीं जाओगे तो लट्ठ लेकर भगाऊँगा।' भगवान् शंकर समझ गये कि वह मुझे ही देखना चाहता है। जैसे ही उपमन्यु को दिव्य चक्षु मिले उसने भगवान् शंकर के दर्शन किये। शंकर जी ने कहा 'मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम्हें अल्प दूध तो क्या क्षीरसागर ही दे देता हूँ।'

भगवान् के दर्शन इन आँखों से नहीं हो सकते। इन आँखों से अग्नि आदि के बाह्य रूप ही दीखते हैं। उनका वास्तविक रूप काम, क्रोध, आलस्य, निद्रा, तन्द्रा, सर्दी, गर्मी, देश, वेश से रहित है, वह

मन रूपी आँख से ही दीखता है। जैसे जमीन तो एक जैसी है, लेकिन यह मेरा भारत देश है, ऐसा किससे दीखती है? मेरा शरीर यहाँ पैदा हुआ है, इसी से देश की सीमा हो गई। यदि मर कर अगले जन्म में तुम चीन में पैदा हो गये तो तुम कहोगे 'चीन मेरा देश है।' इस शरीर में देश और वेश जैसा हमें सिखा दिया गया, वैसा ही हम मान लेते हैं। परमेश्वर के शरीर मन आदि नहीं होने से उनमें देश-वेश आदि भी नहीं है। उस परमेश्वर की कोई मूर्ति नहीं परन्तु फिर भी उसमें भावना के अनुसार शिव, शक्ति और विष्णु की कल्पना हो जाती है।

अजं शाश्वतं कारणं कारणानाम्
शिवं केवलं भासकं भासकानाम्।
तुरीयं तमःपारमाद्यन्तहीनं
प्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनम् ॥ ७ ॥

अजं – (जो) जन्म रहित,
शाश्वतं – हमेशा रहने वाला,
कारणं कारणानाम् – सब कारणों का अन्तिम कारण,
शिवं – भगवान् शिव,
केवलम् – अकेला,
भासकं भासकानाम् – दिखाने वालों को भी दिखाने वाला,
तुरीयं – चौथा,
तमःपारम् – अज्ञान से परे,
आद्यन्तहीनम् – (जिसका) न शुरू है और न अन्त है,
परं पावनम् – जो परम पवित्र और
द्वैतहीनम् – भेद से रहित (है)

प्रपद्ये – (उसकी) मैं शरण लेता हूँ।

भगवान् शंकर का जब ब्याह हो रहा था तब उनसे पूछा गया 'तुम्हारे पिता का नाम क्या है?' शंकर जी ने कहा 'ब्रह्मा।' 'दादा का नाम क्या है?' तो उन्होंने कहा 'विष्णु।' जब उनसे पूछा 'परदादा का नाम क्या है?' तो उन्होंने कहा 'शंकर।' जिसका जन्म ही नहीं हुआ उसके बाप, दादा, परदादा कैसे हो सकते हैं? वह हमेशा रहने वाले हैं। जिस समय महाप्रलय होता है, उस समय भगवान् शंकर अकेले ही रहते हैं।

सूर्य और आँख को रोशनी देने वाले भगवान् शंकर ही हैं। वे हमेशा अज्ञान से परे रहते हैं। भगवान् शंकर को कभी अज्ञान नहीं होता, क्योंकि वे सभी चीजों को जानते हैं, सारी अपवित्रताएँ उनके स्मरण मात्र से दूर हो जाती हैं, इसलिए वे परम पवित्र हैं। भगवान् शंकर सबसे एक जैसा प्रेम करते हैं, ऐसे भगवान् शंकर की मैं शरण लेता हूँ।

नमस्ते नमस्ते विभो विश्वमूर्ते
नमस्ते नमस्ते चिदानन्दमूर्ते।
नमस्ते नमस्ते तपोयोगगम्य
नमस्ते नमस्ते श्रुतिज्ञानगम्य ।। ८ ।।

नमस्ते नमस्ते – आपको बार-बार प्रणाम है।
विभो – (आप) व्यापक हैं,
विश्वमूर्ते – संसार आप का रूप है,
चिदानन्दमूर्ते – ज्ञान और सुख से आप प्रकट होते हैं,
तपोयोगगम्य – तपस्या और योग से आप मिलते हैं,
श्रुतिज्ञानगम्य – वेद के अन्दर आपका ही वर्णन है।

छठे श्लोक में कहा था कि मैं शरण लेता हूँ। अब शरण कैसे ले यह बतलाते हैं। शरण लेने का मुख्य तात्पर्य यही है कि जिसकी हम शरण लें, उसके ही अनुसार बन जायें। इसलिए यहाँ भगवान् को नमस्कार करने को कहा। नमस्कार का अर्थ है त्याग। अपनी इच्छा आदि को छोड़कर भगवान् की इच्छा आदि के अनुसार अपने को ढालना ही नमस्कार है। दो बार नमस्कार कहकर बताया कि निरन्तर ही इस प्रकार का नमन करते रहना चाहिए। अर्थात् केवल थोड़े समय तक पूजा इत्यादि करने मात्र के लिए शास्त्रादि के अनुसार व्यवहार करने से काम नहीं चलेगा किन्तु जब भी कुछ करें, भगवान् की प्रसन्नता के लिए करें, ऐसा प्रयास करना चाहिए। यह बतलाने के लिए दो बार नमः कह दिया।

भगवान् को सबसे पहले विभु अर्थात् प्रकट रूप से स्मरण किया। सनातन धर्म के अनुसार ईश्वर कहीं पाँचवें या सातवें आसमान में नहीं रहता परन्तु जो प्रकट है उसे भी हम ईश्वर मानते हैं, यह विभु शब्द कह कर बतलाया। यह प्रकटरूपता दो प्रकार की है, एक बाह्य प्रपञ्च में और दूसरी प्रत्यगात्मरूप से (अपने आप में)। अतएव पहले विश्वमूर्ते, फिर चिदानन्दमूर्ते कह दिया। चिदानन्द की प्रकटता प्रत्येक आत्मा में होती है। प्रत्यगात्मा अर्थात् मैं खुद।

भगवान् की प्राप्ति के लिए जो आवश्यक है, उसे भी बतलाना चाहिए इसलिए कहा तपोयोगगम्य। कायिक, मानसिक और वाचिक तीन प्रकार का तप भगवान् ने गीता में बतलाया है, उन्हें करना चाहिए। योग का मतलब है सावधान होना। अन्य विषयों में सावधान होना ही चाहिए, जब परमात्मा के विषय में सावधान बनेंगे तभी परमात्मा को पा सकेंगे।

लेकिन अभी हम परमात्मा को जानते नहीं हैं, इसलिए तप योग करने पर भी जब तक हमें परमात्मा कैसा है यह बतलाने वाला कोई न हो तो तब तक हम परमात्मा को नहीं जान सकते।

परमात्मा के विषय में वास्तविक ज्ञान देने वाला एकमात्र साधन वेद है। जैसे रूप के विषय में आँख ही प्रमाण है, ऐसे ही परमात्मा के विषय में वेद ही प्रमाण है। वेद सुनकर जो ज्ञान होता है, उससे परमात्मा की प्राप्ति होती है, यह श्रुतिज्ञानगम्य कह कर बतला दिया।

पूर्व श्लोक में कहा कि श्रुतिजन्य ज्ञान से भगवान् को समझा जाता है। भगवान् कैसे हैं? यह अब बतलाते हैं -

प्रभो शूलपाणे विभो विश्वनाथ
महादेव शंभो महेश त्रिनेत्र।
शिवाकान्त शान्त स्मरारे पुरारे
त्वदन्यो वरेण्यो न मान्यो न गण्यः ।। ६ ।।

प्रभो – आप सबके स्वामी हैं,
शूलपाणे – हाथ में त्रिशुल धारण किये हुए हैं,
विभो – व्यापक हैं,
विश्वनाथ – संसार के मालिक हैं,
महादेव – देवताओं में सबसे बड़े शासन करने वाले हैं,
शंभो – सुख रूप,
महेश – महा प्रशासक हैं,
त्रिनेत्र – सूर्य, चन्द्र और आग रूपी तीन नेत्र वाले हैं,
शिवाकान्त – पार्वती के पति हैं,
शान्त – कभी गुस्सा नहीं करने वाले हैं,

स्मरारे – कामनाओं को नष्ट करने वाले हैं,
पुरारे – त्रिपुरासुर को मारने वाले हैं,
त्वदन्यो – (ऐसे) आपसे दूसरा,
न वरेण्यो – (कोई) चुनने लायक नहीं है,
न मान्यः – (कोई) सम्मान करने योग्य नहीं है,
न गण्यः – (कोई) गिनने लायक नहीं है।

सर्वप्रथम उसे प्रभु कहा, इससे वह अतिशय सामर्थ्य वाला है, यह बतला दिया। केवल सामर्थ्य वाला ही नहीं परन्तु अपनी सामर्थ्य का प्रयोग करनेके साधनों से सम्पन्न है, यह शूलपाणि कहकर बतलाया। उसके शासन–क्षेत्र से अलग और उससे छिपा हुआ कुछ भी नहीं है, यह विभु कहकर बतलाया। संसार में उसके नियम की काट करने की सामर्थ्य किसी में नहीं इसलिए उसे विश्वनाथ कहते हैं। स्वयं परमात्मा के ऊपर किसी का शासन नहीं, अतः वह महादेव है। उसका शासन एकमात्र प्रयोजन से है कि हमारा कल्याण होवे अतः उसे शम्भो कहकर पुकारा है। जगत् के वैचित्र्य की हेतुभूत माया का वह अधीश्वर है, यह महेश शब्द से कहा।

ज्ञान, इच्छा और क्रिया इन तीनों से वह हमें ले जाता है, अर्थात् चलने की सामर्थ्य देता है, यह त्रिनेत्र कहकर बतलाया। हमें वह स्वरूप से ही अच्छा लगता है, हमारी बुद्धि को उससे स्वाभाविक प्रेम है, यह शिवाकान्त कहकर बतलाया। वह हमारी बुद्धि का कान्त है, वह प्रभु की ओर आकर्षित होती है परन्तु इस आकर्षण के पीछे कोई भय नहीं है क्योंकि महादेव तो 'शान्त' है। कान्त होते हुए भी वह स्मरारि है, कामदेव का शत्रु है, इस विरोधाभास को प्रकट किया है। उसका प्रेम कामना से बँधा हुआ नहीं किन्तु स्वरूप से है, यही

रहस्य है।

उपनगर को पुर कहते हैं। हम लोगों का परम धाम शिवस्वरूप है, उसे छोड़कर इस उपनगर रूपी संसार में हम आ गये हैं। चाहिये तो था कि मुख्य नगर की ओर वापिस जाते किन्तु यहीं अटक गये। महादेव तो कान्त हैं, अतः उन्हें हमारा वियोग सहन नहीं होता, इसलिए वह पुर का नाश कर देते हैं, जिससे हम अपने परमधाम को फिर पा सकें। इसीलिए उन्हें पुरारि कहते हैं।

ऐसे महादेव के अतिरिक्त और कोई भी प्रमाणसिद्ध ईश्वर नहीं है। उनको मान्य कहा है, क्योंकि वे ही प्रामाणिक हैं। इसीलिए उन्हीं की सेवा करनी चाहिये, ध्यान करना चाहिए। उन्हीं की सेवा हम तब करें, जब हम उनको चुन लेवें, जीवन का परम ध्येय बना लेवें, इसलिए उन्हें वरेण्य कहा। उनसे भिन्न वरेण्य आदि कोई और नहीं है। उनसे अतिरिक्त जो कुछ भी है वह चुनने योग्य नहीं, ध्यान करने योग्य नहीं। 'त्वदन्यो न' कहकर वेदान्त का परम रहस्य 'त्वम्' पदार्थ से अभिन्न ईश्वर बतला दिय।

पूर्व श्लोक में कहा कि आप के अतिरिक्त कोई भजनीय नहीं है। जिसकी पूजा की जाये, भजन किया जाये, ध्यान दिया जाये, ऐसा क्या है, यह अगले श्लोक में बतलाते हैं-

शम्भो महेश करुणामय शूलपाणे
गौरीपते पशुपते पशुपाशनाशिन्
काशीपते करुणया जगदेतदेक-
स्त्वं हंसि पासि विदधासि महेश्वरोऽसि ।।१०।।

शंभो - (आप) आनन्द स्वरूप,
महेश - सबसे बड़े शासन करने वाले,

करुणामय – दया से भरे हुए,
शूलपाणे – त्रिशूल को हाथ में रखने वाले,
गौरीपते – भगवती गौरी के पति,
पशुपते – सभी जीवों के स्वामी,
पशुपाशनाशिन् – जीवों के बन्धन को काटने वाले,
काशीपते – काशी के स्वामी
त्वम् – आप
एकः – अकेले ही
एतद् – इस
जगतः – संसार (के)
महेश्वरोऽसि – सबसे श्रेष्ठ स्वामी हैं,
करुणया – आप करुणा से,
विदधासि – सृष्टि करते हैं,
पासि – रक्षा करते हैं,
हंसि – नाश करते हैं

भगवान् शंकर ही एकमात्र स्वयं कल्याण स्वरूप होते हुए अन्यों का कल्याण करने वाले हैं, यह शम्भु शब्द का अर्थ है। वे ही सर्वश्रेष्ठ शासक हैं, क्योंकि उनका शासन अन्दर से होता है। सभी प्राणियों के अन्दर रहकर वे शासन करते हैं। जबरदस्ती का शासन भगवान् को प्रिय नहीं। जो बात ठीक है, वह हमें अच्छी लगे तब हम उसे करें, यही उत्तम शासन है। इसलिए उनको महेश कहते हैं। भगवान् हमें दुःख नहीं देना चाहते, क्योंकि उनकी हम पर अत्यन्त कृपा है। जिस पर कृपा होती है, उसको कोई दुःख नहीं देना चाहता। इसलिए भगवान् हम से जो कुछ भी करवाना चाहते हैं, वह सब हमें आनन्द देने के लिए ही करवाना चाहते हैं। यह समझ में आ जाये तो उनका जो अन्दर से होने वाला शासन है उसे मानने में कोई

कठिनाई न हो, इसलिए कह दिया कि वे करुणामय हैं। इस मार्ग में चलने पर हमें कोई कष्ट आये जो कि जरूर आएगा, तो उसे निवारण करने के लिए प्रभु त्रिशूल लिए खड़े हैं। इसलिए शूलपाणि कहा। करुणामय हैं, इसलिए आलस्य भी नहीं करेंगे, हमारे कष्ट को तुरन्त दूर कर देंगे इसमें कोई सन्देह नहीं है।

जिसका गोरा वर्ण हो उसे गौरी कहते हैं। भगवती पार्वती का गौर वर्ण है, वे उनकी पत्नी हैं। हमारी यह बुद्धि यदि शुद्ध हो जाये तब वे इसको वैसे ही चुन लेते हैं जैसे उन्होंने पार्वती को चुना। पति नहीं चुने तो कोई स्त्री उसकी पत्नी कैसे बनेगी? अतः गौरी को भगवान् ने चुना। ऐसे ही शुद्ध बुद्धि वाले को वे चुन लेते हैं। शुद्ध बुद्धि की भी योग्यता न हो तो भी निराश होने की जरूरत नहीं है, क्योंकि जैसे भगवान् गौरीपति हैं वैसे ही वे पशुपति हैं। अपनी पशुरूपता का यदि हमको भान हो जाये तो भी वे हमें चुन लेंगे। पाश से बँधा होना पशु होना है। शास्त्र में चार पाश बतलाए हैं। एक अविद्या, दूसरा मल अर्थात् मिथ्या (गलत) ज्ञान, तीसरा उस मल के कारण होने वाला आवरण (ढँकना) और चौथा ढँक जाने के बाद हम जो धर्माधर्म करते हैं, वे कर्म। अभी हम अपने को इन चारों में ही स्वतन्त्र मानते रहते हैं, जबकि वास्तविकता यह है कि हम इन चारों से बँधे हुए हैं। इस परतन्त्रता का बोध हो जाये, अर्थात् हमें निश्चय हो जाये कि हम पशु हैं, तो भगवान् हमें चुन लेंगे।

अब वह कैसे चुनेंगे यह बता दिया 'पशुपाशनाशिन्' कहकर। पशु को बाँधने वाले जो पाश हैं, उन्हें वे नष्ट कर देते हैं। पशु का बन्धन खोल दें तो फिर उसका ठौर नहीं रहता। ऐसी हमारी दुर्गति नहीं होगी, यह भी हमें निश्चय है, क्योंकि भगवान् काशीपति हैं। हमें काशी में स्थान मिलेगा। काशी मोक्ष की नगरी है। इसलिए पाश का नाश होने पर मोक्ष प्राप्त हो जाता है। भगवान् के पाँच विशेष कार्य हैं, जिन सब का प्रयोजन बस इतना ही है कि हम परमानन्द

में स्थित होवें। पहला है जगत् बनाना, दूसरा है जगत् को स्थिर रखना, उसको नष्ट कर देना, संसार में जीव रूप में प्रवेश करना और पाँचवा है नियमन करना। प्रवेश और नियमन को सूचित किया है महेश्वर पद से। इस काम में उनको किसी की सहायता नहीं चाहिए। वे अकेले ही सब कुछ करते हैं इसलिए कह दिया 'एकः'।

शंका होती है कि जगत् को बनाने वाले ब्रह्मा जी, रक्षा करने वाले विष्णु भगवान्, नाश करने वाले शंकर जी इत्यादि भिन्न-भिन्न देवता प्रसिद्ध हैं, तो कल्याण चाहने वाला एकमात्र भगवान् शंकर की ही शरण लें, ऐसा क्यों? इसका निवारण करने के लिए अन्तिम श्लोक में स्पष्ट करते हैं कि एकमात्र भगवान् शंकर ही पूर्वोक्त पाँच कृत्य करते हैं -

त्वत्तो जगद् भवति देव भव स्मरारे
त्वय्येव तिष्ठति जगन्मृड विश्वनाथ।
त्वय्येव गच्छति लयं जगदेतदीश
लिंगात्मके हर चराचरविश्वरूपिन् ॥ १ ॥

देव - हे देव,
भव - हे संसार के रूप में बनने वाले,
स्मरारे - कामनाओं को नष्ट करने वाले,
मृड - हे सुखरूप,
विश्वनाथ - दुनिया के स्वामी!
ईश - सबपर शासन करने वाले,
हर - पापों को हरने वाले,
चराचरविश्वरूपिन् - जड और चेतन विचित्र रूप धारण करने वाले,
त्वत्तो - आपसे
जगद् - संसार,

भवति – पैदा होता है,
त्वयि – आप में,
एव – ही,
जगत् तिष्ठति – (सारा) संसार रहता है,
त्वयि – आपके
लिंगात्मके – लिंग रूप में
एव – ही
एतत् जगत् – यह जगत्
लयं गच्छति – डूब जाता है।

भगवान् शंकर के 'भव' रूप से ही जगत् उत्पन्न होता है। यद्यपि रजोगुण बहुत होने से भवरूपता अन्यत्र प्रसिद्ध है, फिर भी भगवान् के स्वरूप में रजोगुण का प्रवेश नहीं होने से उन्हें भव के साथ ही साथ स्मरारि कह दिया। इसी भवरूप को ब्रह्मा के रूप में समझा जाता है। सत्त्व के आधिक्य में जो भगवान् का मृड स्वरूप है, उसी में संसार स्थिर रहता है। इसी विश्वनाथ रूप को विष्णु समझा जाता है। तमोगुण प्रबल होनेपर भगवान् का जो रूप है, उसे 'ईश' शब्द से कहा। यही लय का कारण बन जाता है, इसे ही लोक में 'रुद्र' कह देते हैं। सत्त्व और तम भी रज की तरह वस्तुतः स्वरूप में अप्रविष्ट ही जानने चाहिए। ये तीनों जिसके रूप हैं, अर्थात् जो इन तीनों का आधार है, वह हर है। वही चर और अचर समस्त विश्व के रूप में प्रकट होता है। लिंगात्मक अर्थात् प्रपञ्च का सूक्ष्म रूप है, वह हर है अर्थात् समस्त विश्व को अपने में ही लीन कर लेता है। लिंगात्मक रूप में भेदों का लय प्रत्यक्षसिद्ध है।

इस प्रकार एकान्तिक भक्ति करनी चाहिए यह इस अन्तिम श्लोक का तात्पर्य हुआ, क्योंकि भगवान् से भिन्न होकर यदि ब्रह्मा,

विष्णु आदि होते तो भक्ति बँट जाती, उनकी भी भक्ति करते। ऐसा करना नहीं पड़ता क्योंकि भगवान् महादेव से विष्णु आदि भिन्न नहीं हैं। इसलिए इनकी ही भक्ति करनी चाहिये। चरात्मक विश्व भी भगवान् का रूप है, चर विश्व में हम सभी आ गये, अतः हम भी भगवान् से भिन्न नहीं यह जानना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम श्लोक में स्मरामि कहकर साधन से प्रारम्भ किया, मध्य में ईडे नमस्ते आदि कहकर साधन बताया। पंचकृत्य कहकर तत्-पद-वाच्य बतलाया, जीव की पशुरूपता बतलाकर त्वम्-पद्-वाच्य बतलाया और अन्तिम श्लोक में अभेद बतला दिया।

वेदो नित्यमधीयतां तदुदितं कर्मस्वनुष्ठीयतां
तेनेशस्य विधीयतामपचितिः काम्ये मतिस्त्यज्यताम्।
पापौघः परिधूयतां भवसुखे दोषोऽनुसन्धीयताम्
आत्मेच्छा व्यवसीयतां निजगृहात्तूर्णं विनिर्गम्यताम्।।१।।

वेद को तू नित्य पढ़ तद्–उक्त कर्मों को करो।
शिव अर्चना उससे करो काम्यक्रिया को मत करो।
पाप सचित को जला समझो सुखों में दोष को।
शिव की करो तुम चाहना, घर छोड़ जाया भी करो
।।१।।

वेद को नित्य अध्ययन करो, उससे प्रतिपादित्त विहित कर्मों का स्व–वर्णाश्रम के अनुसार विधिविधान से यथाशक्ति पालन करो। उन्हीं कर्मों को ईश्वर के प्रति अर्पित करते हुए फलाकांक्षा की अपेक्षा रखने वाले काम्य कर्मों को छोड़ दो। शुद्ध नित्यकर्मों के द्वारा पाप–मल–समूह को धो डालो। धर्मानुकूल मिलने वाले सांसारिक सुखों में भी दोषों का अनुसन्धान करो। असंसारी आत्मस्वरूप–प्राप्ति की तीव्र इच्छा उत्पन्न करो। देह एवं देहसम्बन्धी सभी में ममता को छोड़ कर परमार्थमार्ग पर शीघ्र निकल पड़ो।।१।।

संगः सत्सु विधीयतां भगवतो भक्तिर्दृढाऽऽधीयतां
शान्त्यादिः परिचीयता दृढतरं कर्माशु सन्त्यज्यताम्।
सद्विद्वानुपसर्प्यतां प्रतिदिनं तत्पादुका सेव्यतां
ब्रह्मैकाक्षरमर्थ्यतां श्रुतिशिरोवाक्यं समाकर्ण्यताम्।।२।।

सत्संग को नित ही करो भगवान की भक्ति करो।
शान्ति को भी प्राप्त कर कर्तृभाव को छोड़ा करो।।
सद्गुरु का ले सहारा उनकी चरणसेवा करो।
प्रणव के जप को करो श्रुतिवाक्य का सुनना करो।।२।।

सच्छास्त्र एवं सत्पुरुषों का ही संग करो। भगवान् में पराभक्ति या प्रपत्ति का व्रत धारण करो। शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान आदि साधनों का संचय करो। बहिर्मुखी प्रवृत्ति को छोड़ दो। श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जाकर नियमानुसार प्रणिपात, शुश्रूषा आदि से उनके चरणों का सेवन करते हुए अद्वितीय अविनाशी ब्रह्म के उपदेश की प्रार्थना करो। सद्गुरु जो वेदान्तवाक्यों का उपदेश देते हैं, उसका समाहित चित्त से श्रवण करो।।२।।

वाक्यार्थश्च विचार्यतां श्रुतिशिरःपक्षः समाश्रीयतां
दुस्तर्कात्सुविरम्यतां श्रुतिमतस्तर्कोऽनुसन्धीयताम्।
ब्रह्मैवास्मि विभाव्यतामहरहर्गर्वः परित्यज्यतां
देहोऽहं मतिरुज्झ्यतां बुधजनैर्वादःपरित्यज्यताम् ।।३।।

वाक्यार्थमीमांसा करो वेदान्त को स्वीकार लो
दुर्युक्तियों से दूर हो श्रुति-तर्क की दृढ़ता करो।।
"मैं ब्रह्म हूँ" के भाव से अभिमान को छोड़ा करो।
देह में "मैं"-बुद्धि और मत वाद विज्ञों से करो ।।३।।

वेदान्त महावाक्यों के सुने हुए अर्थ के ऊपर स्वयुक्ति से विचार करके वेदान्त-सिद्धान्त को अच्छी तरह से हृदयंगम करो। कुतर्क को दूर छोड़ दो। वेदानुकूल तर्कों से अनुसंधान करो। 'मैं ब्रह्म हूँ' इस सिद्ध अर्थ की निरन्तर भावना करो। रातदिन गर्व को नष्ट करने का प्रयत्न करो। देह में अहं बुद्धि का उन्मूलन करो। विद्वानों से

वाद-विवाद करना त्याग दो।।३।।

क्षुद्व्याधिश्च चिकित्स्यतामनुदिनं भिक्षौषधं भुज्यतां
स्वाद्वन्नं न तु याच्यतां विधिवशात्प्राप्तेन सन्तुष्यताम्।
औदासीन्यमभीप्स्यतां जनकृपानैष्ठुर्यमुत्सृज्यतां
शीतोष्णादि विषह्यतां न तु वृथा वाक्यं समुच्चार्यताम् ।।४।।

भूख-रोगों को मिटा भैषज्यवत् भोजन करो।
मत स्वाद के वश में रहो, निज भाग्य से तुष्टि करो।।
मध्यस्थता में स्थित रहो नैष्ठुर्य-करुणा छोड़ दो।
ग्रीष्म-शीतादि सहो बेकार बातें छोड़ दो ।।४।।

भूख रूपी रोग के उपचार के लिये प्रतिदिन भिक्षान्न को औषधि रूप से ग्रहण करो। स्वादिष्ट भोजन की याचना मत करो। प्रारब्धानुसार प्राप्त हुए भोगों से सन्तुष्ट रहो। सर्दी-गर्मी, मान-अपमान आदि द्वन्द्वों को निर्विकार भाव से सह लो। व्यर्थ वचन किसी से भी मत बोलो। उदासीन भाव से व्यवहार करो। दूसरे के ऊपर कृपा करने की या क़ठोरता दिखाने की इच्छा और चेष्टा छोड़ दो ।। ४ ।।

एकान्ते सुखमास्यतां परतरे चेतस्समाधीयतां
पूर्णात्मा सुसामीक्ष्यतां जगदिदं तद्बाधितं दृश्यताम्।
प्राक्कर्म प्रविलाप्यतां चितिबलान्नाप्युत्तरैः श्लिष्यतां

प्रारब्धं त्विह भुज्यतामथ परब्रह्मात्मनास्थीयताम्।।५।।

एकान्त में सुख से रहो शिव को सदा ध्याया करो।
पूर्णात्म का दर्शन करो सारा जगत् बाधा करो।
कर्म संचित को जला चिद्भाव से बर्ता करो।
प्रारब्ध को तुम भोग लो कैवल्य में स्थिति को करो।।५।।

एकान्त में सुखासन में बैठ कर परात्पर ब्रह्म में चित्त को स्थिर करो। उसके पूर्ण स्वरूप का सर्वत्र साक्षात्कार करो। उस साक्षात्कार द्वारा दृश्य जगत् को बाधित अनुभव करो (अर्थात् बिना हुए ही प्रतीत हो रहा है यह समझ लो)। पूर्वजन्म के कर्मों को नष्ट करो। ज्ञान के बल से आगे के कर्मों से अलिप्त रहो। जब तक शरीरपात नहीं होता तब तक साक्षी रूप से प्रारब्ध कर्म के अनिवार्य भोगों का उपभोग करो। अनन्तर अखण्ड ब्रह्मस्वरूप में ही स्थित रहोगे।।५।।